शैक्षिक विमर्श की अपनी जमीन

राघवेन्द्र प्रपन्न

एनसीईआरटी (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्) द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (सन् 2005) नामक दस्तावेज खास मनोभाविक एवं बौद्धिक फिजा में आया है। पिछले पांच वर्षों में जहां एक ओर एनसीईआरटी एवं प्रकारांतर से सरकार के शैक्षिक प्रयासों पर से आम जनता के विश्वास लगातार छिलते रहे हैं। वहीं दूसरी ओर इन्हीं वर्षों में स्कूली पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों को लेकर जिस प्रकार का तर्क-वितर्क एवं वितंडावाद चला उसमें शिक्षा पर की जाने वाली बातचीत राजनैतिक विचारधारा के आधार पर ध्रुवीकरण का शिकार हो गई। जिस बहस-मुबाहिसे को बच्चे एवं उनके मनोविज्ञान से जुड़े हुए शिक्षाशास्त्री सिद्धांतों एवं विमर्शों को केंद्र में रखकर चलाया जाना चाहिए था वह इन्हें धत्ता बतलाकर राजनैतिक-विचारधारात्मक एवं अनुशासनात्मक 'बैंडों' पर बजता रहा और बहस आरोप-प्रत्यारोप में घिर कर अपनी उर्वरता खो बैठी। इस सबने मिला-जुलाकर लोकतांत्रिक संस्था के रूप में राज्य एवं उससे जुड़ी एकादमिक शैक्षिक संस्था की पहलकदमियों पर से जनता का विश्वास हरण कर लिया। लोग प्राकृतिक नियम की तरह यह स्वीकारने लगे हैं कि सत्ता परिवर्तन के साथ शिक्षा में राजनैतिक मंशा से प्रेरित फेर-बदल होना तो स्वाभाविक ही है। इसलिए अगर सरकार या अन्य शैक्षिक संस्था जो कुछ भी फेर-बदल करती है तो उसमें अपने बच्चों के लिए कुछ आवश्वस्तकारी की उम्मीद करना फिजूल है।

नई पाठ्यचर्या के सामने वैसे तो किस्म-किस्म की और थोक के भाव से चुनौतियां हैं पर इस परिस्थिति में उसके सामने सबसे अहम चुनौती यह है कि वह शिक्षा पर चलने वाली बातचीत पर काबिज हो गई, दो ध्रुवीय भावजगत् को दरकाकर एक ऐसा चौपाल रचे जिसमें देश के बच्चों एवं किशोर-किशोरियों के शैक्षिक सरोकार सर्वोच्च प्राथमिकता पर हो और जिसपर शिक्षाशास्त्रीय लिहाज से बातचीत संभव हो सके। वह इनसे जुड़े अभिभावकों तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं सहित देश के आम-नागरिकों के दिलों में यह विश्वास जगा सके कि लोकतांत्रिक अकादमिक संस्थाओं के जरिए बिना किसी राजनैतिक मंशा के बच्चों की पढ़ाई-लिखाई पर बातचीत मुमकिन है। ध्यातव्य है कि इतिहास की पाठ्यपुस्तकों से कुछ अंश निकाले जाने (सन् 2001) और फिर एनसीईआरटी द्वारा सन् 2000 में तैयार की गई पाठ्यचर्या और सन् 2002 के पाठ्यक्रम के बाद से जो भी विमर्श चला वह दो छोरीय आरोपो-प्रत्यारोपों में इस कदर अझुरा गया कि उसे बच्चों तथा किशोरों की शिक्षा पर विमर्श करने का होश ही नहीं रहा। इस प्रकार जिस विमर्श को लोकतांत्रिक जनमानस एवं चेतना को शिक्षित-प्रशिक्षित करने वाला होना चाहिए था वही विमर्श राजनैतिक-बौद्धिक अखाड़ेबाजी में जा फंसा। विमर्श के यह दो छोर लगभग साफ थे। इसमें से एक का दावा है कि शिक्षा में अभी तक भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों तथा विश्वसमुदाय के लिए उसके योगदानों की अनदेखी की गई है। इसलिए उसे पाठ्यचर्या में (विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, सन् 2000, एनसीईआरटी) पर्याप्त जगह दी जा रही है। स्कूली पाठ्यपुस्तकों के कुछ लेखकों पर यह आरोप भी लगाया जाता रहा कि उनपर पश्चिम का अधिक प्रभाव रहने के कारण पश्चिम की अवधारणाओं को ज्यों का त्यों भारतीय संदर्भ में

लागू कर दिया गया है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि स्कूली शिक्षा का स्वदेशी चरित्र स्थापित किया जाए। स्कूली शिक्षा में देशभक्ति एवं गौरव, शिक्षा की संस्कृति विशिष्टता तथा मूल्य शिक्षा पर जोर इसी तर्क प्रणाली की कड़ी में है।

दूसरे छोर की आलोचना यह रही है कि पाठ्यचर्या में निहित नैतिक शिक्षा, देशज ज्ञान एवं भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से जुड़ी हुई शिक्षा, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र गौरव जगाने वाली शिक्षा के नाम पर भारतीय संस्कृति एवं राष्ट्रीयता की संकीर्ण परिभाषाएं गढ़ी जा रही हैं। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की उपलब्धियों के नाम पर जो कुछ भी पढ़ाने की तैयारी की जा रही है, वह विद्यार्थियों को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति की उपलब्धियों को आलोचनात्मक ढंग से देखने-परखने के योग्य नहीं बनाती।

एनसीईआरटी द्वारा तैयार की गई नई पाठ्यचर्या, विरासत में मिले शिक्षा विमर्श के ध्रुवीकरण को अपना कंधा नहीं देती। वह इस तरफ या उस तरफ होने के बजाए बच्चे एवं किशोर-किशोरियों को केंद्र में रखकर ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं पर विस्तार से बात करती है। वह दो खेमों में बंटकर फैलाई जाने वाली असहिष्णुता एवं घृणा के लिए कोई उपजाऊ जमीन नहीं देती। इतिहास में स्कूली शिक्षा में जो कुछ वांछित नहीं हुआ या फिर जो कुछ अवांछित हुआ उसके लिए वह किसी कल्पित जिम्मेवार पर सारी की सारी जिम्मेवारी डालकर अपना पल्ला झाड़ लेने की राजनीति नहीं करती। बल्कि वह मानती है कि इसकी जिम्मेवारी सामूहिक है। यही वजह है कि प्राक्कथन जैसी किफायती जगह में प्रो. यशपाल यह कहते हैं कि, ‘दसियों साल पहले हमने जैसा चाहा था, उस तरह चीजों के न हो पाने का दोष दूसरों पर मढ़ने का लालच तो होता है। दोषारोपण के इस खेल से बचने की कोशिश की है-शायद इस वजह से भी कि किसी न किसी रूप में हम सभी इसके लिए जवाबदेह हैं। हम में से ज्यादातर लोग जिम्मेवार हैं, क्योंकि हम उस मध्यमार्ग के सदस्य हैं जो इस मुल्क की जनता से भावात्मक रूप से खुद को अलग करता गया है।’ यह वक्तव्य अकादमिक ईमानदारी साहस एवं संवेदना के बलबूते ही संभव है इसी की बदौलत ही यह उम्मीद की जा सकती है कि ऐतिहासिक विरासत से मिले स्कूली शिक्षा के ध्रुवीकरण विमर्श को दरकाकर यह दस्तावेज वैसी मनोभाविक फिजा पैदा करने में सफलता हासिल कर सकता है जिसका चरित्र संवादी हो और सरोकार अकादमिक एवं शिक्षाशास्त्रीय। दस्तावेज सीखने वालों के संबंध में उन सिद्धांतों तथा विमर्श को अपना संदर्भ बिंदु बनाता है जो स्कूली ज्ञान की प्रक्रिया एवं चरित्र और उसमें भागीदार बनने वाले विद्यार्थी एवं शिक्षकों की इनके संबंध में चली आ रही मूलभूत पारंपरिक स्थापनाओं को पलट कर रख देते हैं। ध्यातव्य है कि स्कूलों में पढ़ने-पढ़ाने का काम इस दार्शनिक आधार पर टिका हुआ है कि बच्चे कच्ची मिट्टी के लौंदे होते हैं उनको शिक्षक जैसा चाहे आकार दे सकते हैं। वे साफ-सुथरी स्लेट होते हैं जिसपर शिक्षक मनचाही इबारत उकेर सकते हैं। यह तो शिक्षक पर निर्भर है कि वह एक विद्यार्थी को क्या बना सकता है। वह चाहे तो किसी भी विद्यार्थी को डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, कलाकार बना सकता है इत्यादि। निश्चित रूप से सीखने वालों और सिखाने वालों के संबंध में व्याप्त इस तरह के विचार का उत्स उस व्यवहारवादी दर्शन में धंसा हुआ है जो सीखने वाले को निष्क्रिय, बिना बुद्धि का तथा बिना किसी सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भौतिक परिवेश वाली इकाई समझ कर चलता है। सीखने वाले को यंत्र का पुर्जा बना देने

वाले इस दर्शन का प्रकोप न केवल इस देश के बच्चे बल्कि विश्वभर के बच्चे आज भी झेल रहे हैं। इस दर्शन में बुनियादी तौर पर सीखने वाले का मनुष्यत्व उससे छिन जाता है। क्योंकि उसमें दिए जाने वाले ज्ञान को केवल ग्रहण करने, अथवा सूचीबद्ध करने अथवा सरियाने की ही उम्मीद की जाती है। इसमें उससे विवेक, विवेचना, मीमांसा, परिवर्तन, विरोध सृजन करने की अपेक्षा ही नहीं की जाती है।

इस शिक्षा में यह कामना नहीं रहती कि विद्यार्थी अपने पढ़ने-लिखने के क्रम में पढ़ाई-लिखाई से मिलने वाली बौद्धिक ताकत की बदौलत अपनी स्थिति का ऐतिहासिक आकलन करते हुए उसमें बदलाव हेतु कोई हस्तक्षेपकारी भूमिका अदा करे। 20वीं सदी के व्यापक प्रभाव वाले शिक्षाशास्त्री पाउलो फ्रेरे इस तरह की शिक्षा प्रक्रिया को बैंकीय अवधारणा के नाम से संबोधित करते हैं। इसमें शिक्षक जमाकर्ता के रूप में होता है और विद्यार्थी ग्रहणकर्ता के रूप में। शिक्षक साल भर विद्यार्थी के दिमाग रूपी खाने में सूचना रूपी रकम जमा करता रहता है और विद्यार्थी निष्क्रिय खाते की तरह बिना उसमें कोई घट-बढ़ किए उसे अपने दिमागी खाते में जमा करता रहता है। वर्ष के अंत में शिक्षक परीक्षा के नाम पर परीक्षा के पर्चे के जरिए उससे दी गई रकम लौटाने को कहता है। मानो परीक्षा का पर्चा बैंक का विद्ड्रावल फार्म हो। सीखने वालों के मनुष्य होने का स्वाभाविक दर्जा छीनने वाले इस सीखने-सिखाने की प्रणाली की पहचान के लिए शिक्षाशास्त्री पाउलो फ्रेरे ने दस बिंदु गिनवाए हैं- शिक्षक पढ़ाता है और छात्र पढ़ाए जाते हैं। शिक्षक सब कुछ जानता है और छात्र कुछ भी नहीं जानते। शिक्षक सोचता है और छात्रों के बारे में सोचा जाता है। शिक्षक बोलता है और छात्र सुनते हैं- चुपचाप। शिक्षक अनुशासन लागू करता है और छात्र अनुशासित होते हैं। शिक्षक अपनी मर्जी का मालिक है, वह अपनी मर्जी चलाता है और छात्रों को उसकी मर्जी के मुताबिक चलना पड़ता है। शिक्षक कर्म करता है और छात्र उसके कर्म के जरिए सक्रिय होने के भ्रम में रहते हैं। शिक्षक पाठ्यक्रम बनाता है और छात्रों को (जिनसे पाठ्यक्रम बनाते समय कोई सलाह नहीं ली जाती) वही पढ़ना पड़ता है। शिक्षक अपने पेशेवर अधिकार को ज्ञान का अधिकार समझता है (स्वयं को अपने विषय का अधिकारी विद्वान समझता है) और उस अधिकार को छात्रों की स्वतंत्रता के विरुद्ध इस्तेमाल करता है। शिक्षक अधिगम की प्रक्रिया का कर्ता होता है और छात्र महज अधिकार की वस्तुएं। (उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र)।

भारतीय स्कूलों के शैक्षिक परिदृश्य पर अगर हम ऐतिहासिक नजर डालें तो यह कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था इन्हीं विशिष्टताओं को परिपुष्ट करती चली आ रही है। हालांकि समय-समय पर शिक्षा पर आए कुछ दस्तावेजों ने इसे रेखांकित करने और उन्हें बदलने की सिफारिशें भी की हैं। जिनमें प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में गठित शिक्षा समिति की रपट शिक्षा बिना बोझ के (1993) का नाम लिया जा सकता है। पर स्कूली दुनिया का यथार्थ इससे असंवाद की स्थिति बनाए रखने में सफल रहा है। **(क्रमशः)**